

साहित्य में राजधर्मपरक मूल्यों की प्रासंगिकता

• प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी

सारांश- संस्कृत वाङ्मय सम्पूर्ण विश्व में अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह वाङ्मय अतिशय पूर्ण परिष्कृत और हृदयहारी है। भारतीय साहित्य में राजधर्म की अतिशय प्रतिष्ठा रही है। राजधर्म मानव के राष्ट्रीय जीवन में विशेष महत्त्व रखता है। मानव मात्र के कल्याण और अभ्युदय के लिये धर्म का असाधारण महत्त्व है। कुछ लोग धर्म को संकीर्ण क्षेत्र में समेट लेते हैं, जो कि उचित नहीं है। राजधर्म को जिन राज्यों में समुचित महत्त्व दिया जाता है वहाँ व्यष्टि जीवन सुखमय होता है। भारतीय साहित्य में राजधर्म के मूल्यों में मुख्यतः महाकाव्यों, पुराणों, नीतिग्रंथों और ऐतिहासिक आख्यानों में राजधर्म को आदर्शों और नीति का मूल आधार माना गया है। साहित्य में राजधर्म केवल राजा के कर्तव्यों और लोककल्याण पर आधारित प्रस्तुतिकरण है।

मुख्य शब्द- संरक्षण, कर्मसमुच्चय, विखण्डित, निमज्जित, विटप, अखरा, सत्यसन्ध।

धर्मयोगः परः सेव्यते यो नरैः
व्यापकं तस्य क्षेत्रं दरीदृ"यते।
उन्नतिर्जायते चैव निःश्रेयसं
धर्ममार्गः परो नन्द्यते कोविदैः।।।

प्रस्तावना- भारतीय संस्कृत-साहित्य का वैभव अपनी सनातन संस्कृति एवं सभ्यता का उदात्त संवाहक होने के कारण निरातिशयेन आदरणीय है। कलागत विभिन्न दृष्टियों से समन्वित यह साहित्य सामाजिक प्रतिबिम्ब के रूप में आज भी अपनी सार्थकता सिद्ध करता है। साहित्य शब्द का प्रयोग निखिल वाङ्मय के अर्थ को अभिहित करता है। यथा-“साहित्ये सुकुमार वस्तुनि”, “नमोऽस्तु साहित्यरसायतस्मै”, येषां न चेतो ललनासुमग्नं लग्नं न साहित्य सुधासमुद्रे।” संगीत-साहित्य के व्यापक एवं गम्भीर स्वरूप को द्योतित करते हैं। साहित्य के ही अपर पर्याय के रूप में काव्य को हम प्रतिष्ठित पाते हैं। यथा-“सहितं रसेनयुक्तं विशिष्टं तस्य भावः साहित्यम्” इति। अर्थात् साहित्य या काव्य की पृष्ठभूमि में रस दृष्टि या लोकोत्तर, चमत्कारपूर्ण, सहृदयावर्जक उत्सेक सहजतया अभिनिविष्ट माना गया है। इस अपूर्व रस दृष्टि के निवर्तक, नामरूपात्मक कलेवर के रूप में अभिव्यंजक मनीनिशयों को कवि के रूप में अभिहित किया गया है। इसी कवित्व की त्रिकालातीत भूमाभाव की प्रतिष्ठा से परिनिनिष्ठत काव्य प्रणेताओं को

• एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी. वी. एस. कॉलेज, कानपुर

महाकवि के रूप में अधिष्ठित पाते हैं। प्राचीन भारतीय राजधर्म विशेष महत्त्व रखता है इस राजधर्म का व्यापक क्षेत्र रहा है। राजधर्म का अर्थ राजाओं का धर्म है। इसके अन्तर्गत राजाओं से सम्बन्धित प्रत्येक विषय का अनुशीलन है। इसके अन्तर्गत राजाओं के विविध कर्म, आचार-विचार, व्यवहार एवं जीवन दर्शन आदि आते हैं। राजधर्म के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए राजधर्मसंहिता में इस प्रकार कहा गया है-

राजधर्मः प्रशस्तः परो भारते
राजते यत्र राज्ञां सुधर्मः परः।
यः प्रजानां हिते सर्वथा तत्परः
कथ्यते राजधर्मः स लोके सदा।²

भारत में राजधर्म के सम्बन्ध में वैदिक काल से ही चिन्तन होता चला आया है। ऋग्वेद में स्वराज्य और राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में बहुधा चिन्तन हुआ है। भारतीय चिन्तन की यह मौलिक अवधारणा है कि सम्यक् शासन व्यवस्था से राजधर्म का निर्वाह न हुआ तो अराजकता बढ़ सकती है। अराजकता प्रत्येक राष्ट्र के लिए द्योतक है। अराजकता के बढ़ने से शासन तन्त्र अस्त-व्यस्त हो जाता है और इस स्थिति में शान्तिभंग हो जाने पर राष्ट्र की सुरक्षा, सामाजिक संस्कृति और समष्टि, तथा व्यक्तिगत अभ्युदय और कल्याण की सम्भावनायें क्षीण हो जाती हैं। इस स्थिति में राज्य का प्रत्येक तन्त्र प्रभावित हो जाता है। अतएव किसी भी राष्ट्र के लिए राजधर्म की महती आवश्यकता है। जैसा कि तत्त्व पारिजात में कहा गया है।

राजधर्म विना लोके राष्ट्रं महीयते।
माति यत्र राजधर्मः प्रजाकल्याणकारकः॥
सर्वं शुभं च तत्रैव प्रजा तत्र प्रसीदति।
विपरीते राजधर्मे न सौख्यं न च निर्वृतिः॥
अतः राष्ट्रेशु सर्वत्र राजधर्मः प्रशस्यते।³

मानव जीवन में मूल्यों का अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति, दर्शन और चिन्तन में मानवीय मूल्यों को अतिशय महत्त्व दिया गया। मानवीय मूल्यों का संरक्षण और सम्बर्द्धन भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य है जैसा कि संस्कृति-पारिजात में कहा गया है-

संस्कृतं वाङ्मयं विष्टपे विश्रुतं
कोविदैर्यस्य गीतं मुदा गीयते।
मानवीयं सुमूल्यं यया रक्ष्यते
विश्ववन्द्यास्ति सा संस्कृतिर्भूतले।⁴

वस्तुतः मात्र प्राणों को धारण करना जीवन नहीं है। जीवन कर्मसमुच्चय का गंगाप्रवाह है। जो गंगाप्रवाह विषम चट्टानों को विखण्डित करता हुआ प्राणिमात्र को आत्मीय भाव से जीवन धन देता हुआ जीवन कर्म की समाप्ति पर सागर से गले लग जाता है। इसीलिए वह भावन और पावन है और सभी के द्वारा परिपूज्य है। जैसा कि गंगाशतक में कहा गया है-

मातृवत् पूजिता चात्र देवापगा
सापि पुष्पाति पुत्रं यथा भारतम्।
प्राप्य शुद्धं जलं तद् मनोमोदते
शस्यश्यामा धरा तज्जलैः शोभते।।⁵

साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता, उसके ऊपर विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो उससे रचना करवा देती हैं। वस्तुतः साहित्यकार तो वह भावुक हृदय है जो सामान्य से दुःख पर भी कराह उठता है, किसी भी पीड़ा को देखकर कवि हृदय प्रभावित हो जाता है और वह द्रवित हृदय भाव में डूबकर काव्य के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। क्रौञ्ची की पीड़ा वाल्मीकि को करुणासागर में निमज्जित कर आदि लौकिक छन्द की रचना करा देती है और वे सहसा ही कह उठते हैं-

मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।⁶

अर्थात् निशाद! तुझे नित्य-निरन्तर कभी भी शान्ति न मिले क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली। फिर भला समाज का दर्द उसके शब्दों में कैसे न बँधे। इसी व्याप को लेकर, साहित्य कसा जाने लगा। साहित्य की उत्कृष्टता की कसौटी व्यापकता ही मानी गयी।⁷

सृजन की दृष्टि से व्यक्तिगत होने पर भी साहित्य अपने रचनाकार के अनुरंजन मात्र तक सीमित नहीं रहता, समाज को वह व्यक्त करता है और समाज को संस्कारित भी करता है। जीवन की समग्रता साहित्य में व्यक्त होती है। साहित्य के शब्द अनचाहे अपने में, समाज की गन्ध समेटे रहते हैं।

तुलसी जब लिखते हैं- “ऐसी मूढ़ता पा मन की” तो केवल तुलसी नहीं समाज का जन-मन अपनी व्यथा व्यक्त करता है, समझता है संवेदना के स्तर पर, तुलसी और सामान्य जन, यहाँ एक हो जाते हैं। यही समाज की सच्ची अभिव्यक्ति है।

साहित्य की सम्पूर्ण प्रक्रिया, जीवन सागर में उमड़ती तरंग प्रक्रिया है, जो सागर से अलग नहीं जाती। साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है, अपितु वह उसका ही मुखरित रूप है। आत्मकथा, साहित्य के रूप में प्रसारित होती है। साहित्य जीवन विटप का मधुमय सुमन है। वह जीवन का चरम विकास है, किन्तु जीवन के बाहर उसका अस्तित्व नहीं है।⁸

जीवन की यात्रा साहित्य की यात्रा है। साहित्य जीवन के चरण पर चरण धरता चलता है। उसे सम्हालता है, सजाता है, पर उससे भागता नहीं। जीवन काम का प्रतिफल है और साहित्य भी कामना का प्राकट्य। काम से कामनाओं का जन्म होता है।⁹

जब परमात्मा को अकेलापन अखरा तो दूसरे की इच्छा की। उन्होंने पति का रूप धारण किया। सृष्टि प्रारम्भ हो गयी। काम ही सृजन के मूल में है।

लोक भारतीय जीवन में, आराध्य रहा, उसी प्रकार साहित्य में भी ‘लोक’ साहित्य का साध्य रहा।

कीरति भनिति भूति भली सोई। सुरसरि सम सबकहँ हित होई।।¹⁰
भारतीय साहित्य का परम उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। कविराज विश्वनाथ का अभिमत

है सत् साहित्य के सेवन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में विदग्धता, कलाओं में दक्षता, कीर्ति और प्रीति होती है-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्यनिशेवणात्।¹¹

साहित्य पर समाज और राजनीति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। कवि अपनी लेखनी के द्वारा तत्कालीन समाज और राजधर्मपरक मूल्यों पर प्रकाश अवश्य डालता है। राजनीति सम्पूर्ण वातावरण को प्रभावित करती है। परिवार, समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र उसके दायरे में आ जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने वाल्मीकिरामायण में राज्यधर्मपरक मूल्यों का विधिवत् चित्रण किया है। वे एक आदर्श राष्ट्र के लिए एक श्रेष्ठ राजा की सम्भावना करते हैं। आदर्श राज्य अयोध्या में महाराज दशरथ, श्रीरामचन्द्र और भरत एक आदर्श राजा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। महाराज दशरथ धार्मिक और सत्यसन्ध राजा हैं। उनके लिए सत्य और धर्म से बढ़कर कुछ भी नहीं है। वे सत्य और धर्म के परिपालन के लिए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर देते हैं। इससे बढ़कर राजधर्म क्या हो सकता है। कि सांसारिक सुखों के परित्याग की तो बात ही क्या है, सत्य और धर्म की रक्षा के लिए महाराज दशरथ अपने प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं। इससे बढ़कर राजधर्मपरक मूल्य क्या हो सकता है? भगवान् श्रीरामचन्द्र सत्य और धर्म के पालन के व्रत को लेकर राज्य का परित्याग कर अपने पूज्य पिता की आज्ञा को ध्यान में रखते हुए अनेक कष्टों को सहन करते हुए पत्नी सीता और भ्राता लक्ष्मण के साथ वन में निवास करते हैं। लक्ष्मण भी राजकीय सुख और वैभव को त्यागकर राम के साथ वनगमन करते हैं। राम के द्वारा बहुधा समझाने पर भी सीता राम का अनुगमन करती हैं। माता कैकेयी और पिता दशरथ के द्वारा प्रदत्त राज्य को भरत स्वीकार नहीं करते हैं। वे राजधर्म के अनुसार भ्राता लक्ष्मण को ही राज्यसिंहासन पर बैठाना चाहते हैं। परन्तु राम उन्हें अपनी चरणपादुकाएँ प्रदान करते हैं। अयोध्या के राज्यसिंहासन पर राम की चरणपादुकाएँ संस्थापित की जाती हैं। और उनसे आदेश लेकर भरत राज्य का कार्य देखते हैं। श्रेष्ठ साहित्य में पुरुषार्थचतुष्टय सिद्ध होता है। उसमें लोकदृष्टि और लोककल्याण का भाव रहना सर्वथा स्वाभाविक है। यह भाव उदात्तकोटि के राजधर्म का परिपोषक है। अतएव उसमें राजधर्मपरक श्रेष्ठ मूल्यों का प्रसाद सर्वत्र अभिव्याप्त रहता है। एक आदर्श साहित्यकार राजधर्मपरक मूल्यों के आलोक में लोककल्याण के लिए सत्य, शिव और सुन्दर की समाराधना करता है, जिससे उसका साहित्य लोकमंगलकारी बनकर सभी के अभ्युदय और कल्याण का कारण बन जाता है। जैसा कि राजधर्मतन्त्र में कहा गया है-

पूर्णता या समाजस्य संराजते

या तु सिद्धिर्विधानस्य वै वर्तते।

या च सौभाग्य शोभा धरायाः परा

राजधर्मः प्रशस्तोऽस्ति तत्कारणम्।¹²

सन्दर्भ सूची-

1. धर्मसंहिता, 5/25
2. राजधर्मसंहिता, 1/21
3. तत्त्वपारिजात - 3/66, 67
4. संस्कृतिपारिजात, 7/25
5. संस्कृतिपारिजात, 9/35
6. गंगाशतक, 86
7. वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड द्वितीय सर्ग, श्लोक-15
8. स्वाधीनतोत्तर हिन्दी नाटकों में लोकतांत्रिक मूल्य, डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी, पृ0-142-144
9. स्वाधीनतोत्तर हिन्दी नाटकों में लोकतांत्रिक मूल्य, डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी, पृ0-11
10. श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड
11. साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद
12. राजधर्मतन्त्र, 5/25